

## Chapter चार

### राजा कंस के अत्याचार

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस प्रकार कंस अपने असुर मित्रों के कहने पर छोटे-छोटे बच्चों पर अत्याचार करने को ही अत्यन्त व्यवहार-कुशलता समझने लगा।

जब वसुदेव ने पहले की तरह बेड़ी-हथकड़ी पहन लीं तो योगमाया के प्रभाव से बन्दीगृह के सारे दरवाजे बन्द हो गए और योगमाया नवजात शिशु की तरह रोदन करने लगी। उसके रोने से द्वारपाल जाग गए और उन्होंने तुरन्त ही कंस को जानकारी दी कि देवकी के शिशु उत्पन्न हुआ है। यह समाचार सुनकर कंस बड़ी तेजी से सूतिकागृह में चला आया और उस शिशु को बचाने के लिए देवकी के लाख प्रार्थना करने पर भी उस असुर ने बलपूर्वक उस शिशु को देवकी के हाथों से छीनकर शिला पर पटक दिया। कंस का दुर्भाग्य था कि वह शिशु उसके हाथ से छिटककर उसके सिर के ऊपर अष्टभुजा दुर्गा के रूप में प्रकट हो गया। तब दुर्गा ने कंस से कहा, “तुम जिस शत्रु का मन में ध्यान करते हो वह अन्यत्र जन्म ले चुका है। अतएव सारे शिशुओं को क्रूरतापूर्वक मारने की तुम्हारी योजना व्यर्थ सिद्ध होगी।”

भविष्यवाणी के अनुसार देवकी की आठवीं सन्तान को कंस का वध करना था अतः जब कंस ने देखा कि आठवीं सन्तान कन्या है और जब उसने यह सुना कि उसका तथाकथित शत्रु अन्यत्र जन्म ले चुका है, तो उसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उसने देवकी तथा वसुदेव को छोड़ देने का निश्चय किया और उनके समक्ष अपनी क्रूरताओं की गलती स्वीकार की। उसने देवकी तथा वसुदेव के चरणों पर

गिरकर क्षमा-याचना की और उन्हें आश्वस्त करने का प्रयास किया कि जो कुछ घट चुका है उसे घटना ही था। अतएव उसके द्वारा वध की गई अपनी अनेक सन्तानों के लिए वे दुखी न हों। चूँकि देवकी तथा वसुदेव अत्यन्त पवित्र थे अतएव उन्होंने कंस को उसके अत्याचारों के लिए तुरन्त क्षमा कर दिया और यह देखकर कि उसकी बहन तथा बहनोई प्रसन्न थे कंस अपने घर लौट गया।

किन्तु रात बीत जाने पर कंस ने अपने मंत्रियों को बुलाकर उन्हें जो कुछ घटा था कह सुनाया। ये सारे मंत्री असुर थे अतः उन्होंने कंस को सलाह दी कि चूँकि उसका शत्रु अन्यत्र जन्म ले चुका है, अतः विगत दस दिनों में कंस के राज्य के गाँवों में जितने भी बालक उत्पन्न हुए हों उन्हें मार डाला जाए। यद्यपि देवतागण कंस से सदैव भयभीत रहते हैं, किन्तु उनके साथ नर्मी नहीं बरतनी चाहिए। क्योंकि आखिरकार हैं तो वे शत्रु ही, अतः कंस को चाहिए कि वह उनका समूल विनाश करने का भरसक प्रयत्न करे। उन असुर मंत्रियों ने यह भी सलाह दी कि कंस को चाहिए कि वह विष्णु के प्रति अपनी शत्रुता बनाए रखे क्योंकि विष्णु ही सारे देवताओं के आदि पुरुष हैं। ब्राह्मण, गाय, वेद, तपस्या, सच्चाई, इन्द्रियों तथा मन का संयम, आज्ञाकारिता तथा दया विष्णु के शरीर के विभिन्न अंग हैं, जो ब्रह्माजी तथा शिवजी समेत सभी देवताओं के आदिदेव हैं। अतः मंत्रियों ने सलाह दी कि देवताओं, सन्त पुरुषों, गायों तथा ब्राह्मणों को ठीक से दण्डित किया जाए। अपने असुर मित्र-मंत्रीगणों द्वारा इस तरह की कठोर सलाह दिए जाने पर कंस ने उनकी बातों को मान लिया और यही लाभप्रद समझा कि वह ब्राह्मणों से ईर्ष्या बनाए रखे। अतः कंस के आदेशानुसार असुरों ने पूरी ब्रजभूमि में अपने अत्याचार शुरू कर दिए।

श्रीशुक उवाच

बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।

ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; बहिः-अन्तः-पुर-द्वारः—घर के भीतरी तथा बाहरी दरवाजे; सर्वाः—सारे; पूर्व-वत्—पहले की तरह; आवृताः—बन्द; ततः—तत्पश्चात्; बाल-ध्वनिम्—नवजात शिशु का रोदन; श्रुत्वा—सुनकर; गृह-पालाः—घर के सारे वासी विशेषतया द्वारपाल; समुत्थिताः—जग गए।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, घर के भीतरी तथा बाहरी दरवाजे पूर्ववत् बन्द हो गए। तत्पश्चात् घर के रहने वालों ने, विशेष रूप से द्वारपालों ने, नवजात शिशु का

क्रन्दन सुना और अपने बिस्तरों से उठ खड़े हुए।

**तात्पर्य :** इस अध्याय में योगमाया के कार्यकलाप प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं देवकी तथा वसुदेव कंस के भ्रामक नृशंस कार्यो को क्षमा कर देते हैं और कंस पश्चात्ताप करता हुआ उनके चरणों पर गिर पड़ता है। बंदीगृह के द्वारपालों तथा अन्य लोगों के जगने के पूर्व अनेक घटनाएँ घटीं। कृष्ण का जन्म हुआ और वे गोकुल में यशोदा के घर पहुँचा दिए गए, सुदृढ़ दरवाजे खुले और फिर बन्द हो गए और वसुदेव पुनः लोहे की शृंखलाओं में जकड़ गए। किन्तु द्वारपाल यह सब नहीं जान पाए। वे तो तब जगे जब उन्होंने नवजात शिशु योगमाया को चिल्लाते सुना।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है कि ये द्वारपाल कुत्तों के तुल्य थे। रात में कुत्ते सड़कों पर द्वारपाल जैसा कार्य करते हैं। यदि एक कुत्ता भूँकता है, तो सब कुत्ते उसी समय भूँकने लगते हैं। यद्यपि इन कुत्तों को द्वारपाल का कार्य करने के लिए कोई नियुक्त नहीं करता, किन्तु वे अपने पड़ोस की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं और ज्योंही कोई अज्ञात व्यक्ति प्रवेश करता है, तो वे तुरन्त भूँकने लगते हैं। योगमाया तथा महामाया दोनों ही अनेक भौतिक कार्यकलापों में काम करती हैं ( प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः ) किन्तु यद्यपि भगवान् की शक्ति उनके अपने निर्देशानुसार कार्य करती है ( मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ) किन्तु कुत्ते-सदृश राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ सोचते हैं कि वे बाह्यजगत के खतरों से अपने पड़ोस को सुरक्षित रखते हैं। ये माया के कार्य हैं। किन्तु जो कृष्ण शरण में चला जाता है, वह इस जगत के इन कुत्तों तथा कुत्तों जैसे अभिभावकों द्वारा प्रदत्त संरक्षण से मुक्ति पा लेता है।

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ।

आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ते—वे सारे द्वारपाल; तु—निस्सन्देह; तूर्णम्—शीघ्र; उपव्रज्य—राजा के समक्ष जाकर; देवक्याः—देवकी का; गर्भ-जन्म—गर्भ से बाहर आना; तत्—उस ( शिशु ); आचख्युः—प्रस्तुत किया; भोज-राजाय—भोजराज कंस को; यत्—जिससे; उद्विग्नः—अत्यधिक चिन्तित; प्रतीक्षते—प्रतीक्षा कर रहा था ( शिशु जन्म की )।

तत्पश्चात् सारे द्वारपाल जल्दी से भोजवंश के शासक राजा कंस के पास गये और उसे देवकी से शिशु के जन्म लेने का समाचार बतलाया। अत्यन्त उत्सुकता से इस समाचार की प्रतीक्षा कर रहे कंस ने तुरन्त ही कार्यवाही की।

**तात्पर्य :** इस भविष्यवाणी के कारण कि देवकी की आठवीं सन्तान कंस का वध करेगी, कंस अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था। इस बार वह जगकर प्रतीक्षा कर रहा था अतः जब द्वारपाल उसके निकट गए तो वह शिशु को मारने को तुरन्त उद्यत हुआ।

स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।

सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह ( कंस ); तल्पात्—बिस्तर से; तूर्णम्—शीघ्र ही; उत्थाय—उठकर; कालः अयम्—यह रही मेरी मृत्यु, परम काल; इति—इस प्रकार; विह्वलः—उद्विग्न; सूती-गृहम्—सौर को; अगात्—गया; तूर्णम्—देरी लगाए बिना; प्रस्खलन्—बिखरे हुए; मुक्त—खुले; मूर्ध-जः—सिर के बाल।

कंस तुरन्त ही बिस्तर से यह सोचते हुए उठ खड़ा हुआ, “यह रहा काल, जिसने मेरा वध करने के लिए जन्म लिया है।” इस तरह उद्विग्न एवं अपने सिर के बाल बिखराए कंस तुरन्त ही उस स्थान पर पहुँचा जहाँ शिशु ने जन्म लिया था।

**तात्पर्य :** कालः शब्द महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह बालक कंस का वध करने के लिए उत्पन्न हुआ था, किन्तु कंस ने सोचा कि इस बालक का वध करने का यह उपयुक्त समय है, जिससे स्वयं उसका जीवन बच जाए। वास्तव में काल भगवान् का ही दूसरा नाम है जब वे वध करने के उद्देश्य से प्रकट होते हैं। जब अर्जुन ने विराट रूप कृष्ण से पूछा, “आप कौन हैं?” तो भगवान् ने कहा कि मैं साक्षात् काल हूँ। प्रकृति का नियम है कि जब अवांछित रीति से जनसंख्या में वृद्धि होती है, तो काल प्रकट होता है और भगवान् की ऐसी व्यवस्था बनती है कि लोग बड़ी संख्या में युद्ध, महामारी, दुर्भिक्ष इत्यादि नाना कारणों से मारे जाते हैं। उस समय नास्तिक राजनीतिक नेता भी गिरिजाघर, मसजिद या मन्दिर जाकर ईश्वर से कृपा माँगते हैं। किन्तु इसके पूर्व वे भगवान् को या उनकी इच्छा को जानने का कोई प्रयास नहीं करते। काल के प्रकट होने पर ही वे कृपा माँगते हैं। मृत्यु परम काल अर्थात् भगवान् का एक दूसरा गुण है। मृत्यु के समय नास्तिक को काल के समक्ष घुटने टेकने पड़ते हैं और तब भगवान् उसकी सारी सम्पत्ति हर लेते हैं ( मृत्युः सर्वं हरश्चाहम् ) और उसे दूसरा शरीर धारण करने के लिए बाध्य कर देते हैं ( तथा देहान्तरप्राप्तिः )। नास्तिक लोग इसे नहीं जानते और यदि जानते भी हैं, तो उपेक्षा करते हैं जिससे वे अपना सामान्य जीवन बिता सकें। कृष्णभावनामृत आन्दोलन उन्हें सिखलाने का प्रयास कर रहा है कि भले ही वे कुछ वर्षों तक महान् रक्षक या प्रहरी बने रहें, किन्तु

काल के प्रकट होते ही उन्हें दूसरा शरीर धारण करना होगा। यही प्रकृति का नियम है। इसे न जानने के कारण वे प्रहरी बनकर अपना समय व्यर्थ गँवाते हैं और भगवान् की कृपा प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते। स्पष्ट कहा गया है—*अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि*—कृष्णभावनामृत के बिना मनुष्य को जन्म-मृत्यु में भटकते रहना पड़ता है और इसका पता नहीं चल पाता है कि अगले जन्म में क्या होगा।

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ।

स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तम्—कंस से; आह—कहा; भ्रातरम्—अपने भाई; देवी—माता देवकी ने; कृपणा—असहाय; करुणम्—कातर; सती—सती; स्नुषा इयम् तव—यह शिशु तुम्हारी भावी पुत्र-वधू बनेगी; कल्याण—हे शुभ; स्त्रियम्—स्त्री को; मा—नहीं; हन्तुम्—वध करना; अर्हसि—तुम्हें शोभा देता है।

असहाय तथा कातर भाव से देवकी ने कंस से विनती की : मेरे भाई, तुम्हारा कल्याण हो। तुम इस बालिका को मत मारो। यह तुम्हारी पुत्र-वधू बनेगी। तुम्हें शोभा नहीं देता कि एक कन्या का वध करो।

तात्पर्य : इसके पूर्व कंस ने यह सोचकर देवकी को क्षमा कर दिया था कि स्त्री का वध नहीं करना चाहिए, विशेष रूप से यदि वह गर्भिणी हो। किन्तु अब यही कंस माया के प्रभाव से स्त्री को, न केवल स्त्री, वरन् नवजात असहाय कन्या को मार डालने के लिए उद्यत था। देवकी अपने भाई को इस पापपूर्ण जघन्य कृत्य से बचाना चाह रही थीं अतएव उन्होंने उससे कहा, “तुम कन्या को मारने का नृशंसता पूर्ण पाप मत करो। तुम्हारा कल्याण हो।” असुरजन अपने स्वार्थ के लिए पाप-पुण्य का विचार किए बिना कुछ भी कर सकते हैं। किन्तु इसके विपरीत, देवकी यद्यपि सुरक्षित थीं और अपने पुत्र कृष्ण को जन्म दे चुकी थीं, किन्तु वे पराई कन्या को बचाने के लिए चिन्तित थीं। यह उनके लिए स्वाभाविक ही था।

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः ।

त्वया दैवनिःसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

बहवः—अनेक; हिंसिताः—ईर्ष्यावश मारे गए; भ्रातः—हे भाई; शिशवः—अनेक शिशु; पावक-उपमाः—तेज और सौन्दर्य में अग्नि के समान; त्वया—तुम्हारे द्वारा; दैव-निसृष्टेन—भविष्यवाणी से; पुत्रिका—कन्या; एका—एक; प्रदीयताम्—तुम मुझे उपहार स्वरूप दे दो।

हे भ्राता, तुम दैववश मेरे अनेक सुन्दर तथा अग्नि जैसे तेजस्वी शिशुओं को पहले ही मार चुके हो। किन्तु कृपा करके इस कन्या को छोड़ दो। इसे उपहार स्वरूप मुझे दे दो।

तात्पर्य : यहाँ हम यह देखते हैं कि देवकी ने सर्वप्रथम कंस के क्रूर कर्मों—उसके द्वारा अपने अनेक पुत्रों के वध की ओर ध्यान दिलाया। इसके बाद वे उससे यह कहकर समझौता करना चाहती थीं कि उसने जो भी किया वह उसका दोष न था अपितु विधाता का रचा था। इसके बाद उन्होंने उससे याचना की कि वे उन्हें इस पुत्री को उपहार के रूप में दे दें। देवकी क्षत्रिय की पुत्री थीं अतएव राजनैतिक दावपेंच जानती थीं। राजनीति में सफलता प्राप्त करने की अनेक विधियाँ हैं—दम, साम तथा दान। कंस की क्रूरता द्वारा मारे गए अपने पुत्रों के लिए उस पर सीधा आक्षेप करने की दम नीति का देवकी ने पहले आश्रय लिया। किन्तु इसके बाद यह कहकर समझौता कर लिया कि यह उसका दोष नहीं था और उसी के बाद उन्होंने उससे एक वर माँगा। महाभारत के इतिहास से हमें पता चलता है कि क्षत्रियों अर्थात् शासकों की पत्नियाँ तथा पुत्रियाँ राजनीतिक दाँवपेंच जानती थीं, किन्तु हम यह भी जानते हैं कि किसी भी स्त्री को मुख्य शासक का पद प्रदान नहीं हुआ। यह मनुसंहिता के आदेश के अनुसार है, किन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि मनुसंहिता का भी अब उपहास किया जा रहा है और वैदिक समाज के सदस्य, आर्य लोग कुछ भी नहीं कर सकते। कलियुग की ऐसी स्थिति है। विधि के विधान बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो

न लभ्यते यद् भ्रमतामुपर्यधः ।

तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं

कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥

( भागवत १.५.१८ )

देवकी अच्छी तरह जानती थीं कि उनके अनेक पुत्रों का वध विधि द्वारा निर्दिष्ट था अतः कंस को दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। कंस को अच्छी शिक्षा देना भी व्यर्थ था। उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये (चाणक्य पंडित)। मूर्ख व्यक्ति को अच्छा उपदेश देने पर वह अधिकाधिक क्रोध

प्रकट करता है। यही नहीं, क्रूर व्यक्ति साँप से भी अधिक घातक होता है। साँप तथा क्रूर व्यक्ति दोनों ही क्रूर होते हैं, किन्तु क्रूर व्यक्ति अधिक घातक होता है क्योंकि सर्प को तो मंत्रों या औषधियों से मुग्ध जा सकता है, किन्तु क्रूर व्यक्ति का दमन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता। कंस का स्वभाव ऐसा ही था।

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ।

दातुमर्हसि मन्दाया अङ्ग्रेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ननु—किन्तु; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; हि—निश्चय ही; अवरजा—छोटी बहन; दीना—दीन; हत-सुता—सन्तान से विहीन की गई; प्रभो—हे प्रभु; दातुम् अर्हसि—तुम देने में समर्थ हो; मन्दायाः—इस अभागिन को; अङ्ग्रे—मेरे भाई; इमाम्—इस; चरमाम्—अन्तिम; प्रजाम्—बालक को।

हे प्रभु, हे मेरे भाई, मैं अपने सारे बालकों से विरहित होकर अत्यन्त दीन हूँ, फिर भी मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ अतएव यह तुम्हारे अनुरूप ही होगा कि तुम इस अन्तिम शिशु को मुझे भेंट में दे दो।

श्रीशुक उवाच

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् ।

याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; उपगुह्य—आलिगन करके; आत्मजाम्—अपनी पुत्री को; एवम्—इस प्रकार; रुदत्या—रुदन करती देवकी द्वारा; दीन-दीन-वत्—एक गरीब स्त्री की भाँति अत्यन्त दीनतापूर्वक; याचितः—माँगे जाने पर; ताम्—उसे ( देवकी को ); विनिर्भर्त्स्य—भर्त्सना करके; हस्तात्—हाथ से; आचिच्छिदे—बलपूर्वक छीन लिया; खलः—उस दुष्ट कंस ने।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : अपनी पुत्री को दीनतापूर्वक सीने से लगाये हुए तथा बिलखते हुए देवकी ने कंस से अपनी सन्तान के प्राणों की भीख माँगी, किन्तु वह इतना निर्दयी था कि उसने देवकी को फटकारते हुए उसके हाथों से उस बालिका को बलपूर्वक झपट लिया।

तात्पर्य : यद्यपि देवकी एक दीन स्त्री की तरह बिलख रही थीं किन्तु वास्तव में वे दीन नहीं थीं इसीलिए दीनवत् शब्द का प्रयोग हुआ है। वे पहले ही कृष्ण को जन्म दे चुकी थीं अतएव उनसे बढ़कर धनवान और कौन हो सकता था? यहाँ तक कि देवतागण भी उनकी स्तुति करने आये थे, किन्तु देवकी ने एक निर्धन सताई हुई स्त्री की भूमिका इसीलिए निभाई क्योंकि वे यशोदा की कन्या को

बचाना चाह रही थीं ।

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ।  
अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ताम्—शिशु को; गृहीत्वा—बलपूर्वक लेकर; चरणयोः—दोनों पाँवों से; जात-मात्राम्—नवजात शिशु को; स्वसुः—अपनी बहन की; सुताम्—कन्या को; अपोथयत्—पछाड़ दिया; शिला-पृष्ठे—पत्थर के ऊपर; स्व-अर्थ-उन्मूलित—विकट स्वार्थ के वशीभूत होकर जड़ से उखाड़ फेंका; सौहृदः—सारे मित्र या पारिवारिक सम्बन्ध ।

अपने विकट स्वार्थ के कारण अपनी बहन से सारे सम्बन्ध तोड़ते हुए घुटनों के बल बैठे कंस ने नवजात शिशु के पाँवों को पकड़ा और उसे पत्थर पर पटकना चाहा ।

सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ।  
अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सा—वह कन्या; तत्-हस्तात्—कंस के हाथ से; सम्-उत्पत्य—छूटकर; सद्यः—तुरन्त; देवी—देवी के रूप में; अम्बरम्—आकाश में; गता—चली गई; अदृश्यत—देखी गई; अनुजा—छोटी बहन; विष्णोः—भगवान् की; स-आयुधा—हथियारों सहित; अष्ट—आठ; महा-भुजा—बड़ी-बड़ी भुजाओं वाली ।

वह कन्या, योगमाया देवी जो भगवान् विष्णु की छोटी बहन थी, कंस के हाथ से छूट कर ऊपर की ओर चली गई और आकाश में हथियारों से युक्त आठ भुजाओं वाली देवी—देवी दुर्गा—के रूप में प्रकट हुई ।

तात्पर्य : कंस ने कन्या को नीचे पत्थर पर पटकना चाहा, किन्तु वह तो भगवान् विष्णु की छोटी बहन योगमाया थी अतः हाथ से छूटकर ऊपर चली गई और देवी दुर्गा का रूप धारण कर लिया । अनुजा शब्द महत्त्वपूर्ण है । इसका अर्थ है, “छोटी बहन ।” जब विष्णु या कृष्ण ने देवकी से जन्म लिया तो उसी समय उन्होंने यशोदा के गर्भ से भी जन्म लिया होगा । अन्यथा योगमाया भगवान् की छोटी बहन कैसे बनती ?

दिव्यस्त्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ।  
धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥ १० ॥  
सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ।  
उपाहतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ



दिव्य-स्रक्-अम्बर-आलेप—तब उसने चन्दन लेप, फूल-माला तथा सुन्दर वस्त्रों से आभूषित देवी का रूप धारण कर लिया; रत्न-आभरण-भूषिता—बहुमूल्य रत्नों वाले आभूषणों से सज्जित; धनुः-शूल-इषु-चर्म-असि—धनुष, त्रिशूल, तीर, ढाल तथा तलवार से युक्त; शङ्ख-चक्र-गदा-धरा—तथा शंख, चक्र और गदा धारण किए हुए; सिद्ध-चारण-गन्धर्वैः—सिद्ध, चारण तथा गन्धर्वों के द्वारा; अप्सरः-किन्नर-उरगैः—अप्सराओं, किन्नरों तथा उरगों द्वारा; उपाहत-उरु-बलिभिः—सभी उसके लिए भेंटें लेकर आए; स्तूयमाना—प्रशंसित होकर; इदम्—ये शब्द; अब्रवीत्—उसने कहे।

देवी दुर्गा फूल की मालाओं से सुशोभित थीं, वे चन्दन का लेप किए थीं और सुन्दर वस्त्र पहने तथा बहुमूल्य रत्नों से जटित आभूषणों से युक्त थीं। वे अपने हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए थीं। अप्सराएँ, किन्नर, उरग, सिद्ध, चारण तथा गन्धर्व तरह-तरह की भेंट अर्पित करते हुए उनकी प्रशंसा और पूजा कर रहे थे। ऐसी देवी दुर्गा इस प्रकार बोलीं।

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ।

यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या लाभ; मया—मुझे; हतया—मारने में; मन्द—अरे मूर्ख; जातः—पहले ही जन्म ले चुका है; खलु—निस्सन्देह; तव अन्त-कृत्—जो तुम्हारा वध करेगा; यत्र क्व वा—अन्यत्र कहीं; पूर्व-शत्रुः—तुम्हारा पहले का शत्रु; मा—मत; हिंसीः—मारो; कृपणान्—अन्य बेचारे बालक; वृथा—व्यर्थ ही।

अरे मूर्ख कंस, मुझे मारने से तुझे क्या मिलेगा? तेरा जन्मजात शत्रु तथा वध करने वाला पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अन्यत्र कहीं जन्म ले चुका है। अतः तू व्यर्थ ही अन्य बालकों का वध मत कर।

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ।

बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; प्रभाष्य—कहकर; तम्—कंस से; देवी—देवी दुर्गा; माया—योगमाया; भगवती—भगवान् जैसी शक्ति से सम्पन्न; भुवि—पृथ्वी पर; बहु-नाम—अनेक नामों वाले; निकेतेषु—विभिन्न स्थानों में; बहु-नामा—अनेक नामों वाली; बभूव—हुई; ह—निस्सन्देह।

कंस से इस तरह कहकर देवी दुर्गा अर्थात् योगमाया वाराणसी इत्यादि जैसे विभिन्न स्थानों में प्रकट हुई और अन्नपूर्णा, दुर्गा, काली तथा भद्रा जैसे विभिन्न नामों से विख्यात हुई।

तात्पर्य : देवी दुर्गा कलकत्ता में काली, मुम्बई में मुम्बादेवी, वाराणसी में अन्नपूर्णा, कटक में भद्रकाली तथा अहमदाबाद में भद्रा कहलाती हैं। इस तरह अलग-अलग जगहों में वे अलग-अलग नामों से जानी जाती हैं। उनके भक्त शक्त अर्थात् भगवान् की शक्ति के उपासक कहलाते हैं जबकि पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् के भक्त वैष्णव कहलाते हैं। वैष्णवों का दिव्य लोक अर्थात् वैकुण्ठ जाना निश्चित है, जबकि शाक्तों को इसी भौतिक जगत में रहकर तरह-तरह के भोग-विलास करना नियत है। भौतिक जगत में जीव को नाना प्रकार के शरीर धारण करने पड़ते हैं। *भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया* ( *भगवद्गीता* १८.६१ )। योगमाया या माया दुर्गादेवी जीव की इच्छा के अनुसार उसे विशेष प्रकार का शरीर प्रदान करती हैं, जिसे *यन्त्र* अर्थात् मशीन कहा गया है। किन्तु जो जीव वैकुण्ठलोक चले जाते हैं उन्हें पुनः इस भौतिक शरीर रूपी बन्दीगृह में लौटना नहीं होता ( *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन* )। *जन्म न एति*—ये शब्द सूचित करते हैं कि सारे जीव भगवान् की संगति का आनन्द उठाने के लिए वैकुण्ठ तथा वृन्दावन के दिव्य धामों में अपने मूल आध्यात्मिक शरीरों में रहते हैं।

तयाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ।

देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तया—दुर्गा देवी द्वारा; अभिहितम्—कहे गए शब्दों को; आकर्ण्य—सुनकर; कंसः—कंस; परम-विस्मितः—अत्यधिक आश्चर्यचकित था; देवकीम्—देवकी को; वसुदेवम् च—तथा वसुदेव को; विमुच्य—तुरन्त विमुक्त करके; प्रश्रितः—अत्यन्त दीनतापूर्वक; अब्रवीत्—इस प्रकार बोला।

देवीदुर्गा के शब्दों को सुनकर कंस अत्यन्त विस्मित हुआ। तब वह अपनी बहन देवकी तथा बहनोई वसुदेव के निकट गया, उन्हें बेड़ियों से विमुक्त कर दिया तथा अति विनीत भाव में इस प्रकार बोला।

तात्पर्य : कंस को आश्चर्य हुआ क्योंकि देवी दुर्गा तो देवकी की कन्या निकलीं। देवकी तो मानव जाति की थी, भला देवी दुर्गा उसकी पुत्री किस तरह हो सकती है? उसके आश्चर्य का यही कारण था। यही नहीं, देवकी की आठवीं सन्तान कन्या कैसे हो गई? इससे भी उसे आश्चर्य हुआ। असुरगण सामान्यतया माता दुर्गा अर्थात् शक्ति या फिर देवताओं के, विशेष रूप से शिवजी के, भक्त होते हैं। अपने आदि अष्टभुजी रूप में हथियार धारण किए हुए दुर्गा के प्राकट्य ने तुरन्त ही कंस की इस धारणा को बदल दिया कि देवकी मानव है। अवश्य ही उसमें कोई न कोई दिव्य गुण होंगे अन्यथा देवी दुर्गा उसके गर्भ से क्यों जन्म लेतीं? ऐसी परिस्थिति में आश्चर्यचकित कंस ने अपनी बहन देवकी के प्रति की गई नृशंसताओं की प्रतिपूर्ति कर देनी चाही।

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ।

पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; भगिनि—मेरी बहन; अहो—ओह; भाम—मेरे बहनोई; मया—मेरे द्वारा; वाम्—तुम दोनों को; बत—निस्सन्देह; पाप्मना—पापपूर्ण कार्यों से; पुरुष-अदः—मानव-भक्षी, राक्षस; इव—सदृश; अपत्यम्—शिशु को; बहवः—अनेक; हिंसिताः—मारे गए; सुताः—पुत्रगण।

हाय मेरी बहन! हाय मेरे बहनोई! मैं सचमुच उस मानव-भक्षी ( राक्षस ) के तुल्य पापी हूँ जो अपने ही शिशु को मारकर खा जाता है क्योंकि मैंने तुमसे उत्पन्न अनेक पुत्रों को मार डाला है।

तात्पर्य : ऐसा माना जाता है कि राक्षसगण अपने ही पुत्रों को खा जाने के आदी होते हैं जिस तरह साँप तथा अन्य अनेक जानवर कभी कभी करते हैं। सम्प्रति कलियुग में राक्षस पिता तथा माता अपने शिशुओं को गर्भ में ही मार रहे हैं और कुछ तो भ्रूण को भी बड़े चाव से खाते हैं। इस तरह तथाकथित सभ्यता राक्षसों को उत्पन्न करके क्रमशः प्रगति कर रही है।

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ।

कान्त्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह व्यक्ति ( कंस ); तु—निस्सन्देह; अहम्—मैं; त्यक्त-कारुण्यः—सारी दया से विहीन; त्यक्त-ज्ञाति-सुहृत्—जिसने अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों का भी परित्याग कर रखा है; खलः—क्रूर; कान् लोकान्—कौन से लोकों में; वै—निस्सन्देह; गमिष्यामि—जाऊँगा; ब्रह्म-हा इव—ब्राह्मण का वध करने वाले के समान; मृतः श्वसन्—मरने के बाद या जीते ही जीते।

मैंने दयाविहीन तथा क्रूर होने के कारण अपने सारे सम्बन्धियों तथा मित्रों का परित्याग कर दिया है। अतः मैं नहीं जानता कि ब्राह्मण का वध करने वाले व्यक्ति के समान मृत्यु के बाद या इस जीवित अवस्था में मैं किस लोक को जाऊँगा?

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ।

यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दैवम्—विधाता; अपि—भी; अनृतम्—झूठ; वक्ति—कहते हैं; न—नहीं; मर्त्याः—मनुष्यगण; एव—निश्चय ही; केवलम्—केवल; यत्-विश्रम्भात्—उस भविष्यवाणी में विश्वास करने के कारण; अहम्—मैंने; पापः—अत्यन्त पापी; स्वसुः—अपनी बहन के; निहतवान्—मार डाले; शिशून्—अनेक बालकों को।

हाय! कभी-कभी न केवल मनुष्य झूठ बोलते हैं अपितु विधाता भी झूठ बोलता है। और मैं इतना पापी हूँ कि मैंने विधाता की भविष्यवाणी को मानते हुए अपनी ही बहन के इतने बच्चों का वध कर दिया।

मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतं भुजः ।  
जान्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

मा शोचतम्—( इसके पहले जो हो गया उसके लिए ) अब दुखी न हों; महा-भागौ—हे आत्मज्ञानी तथा भाग्यशालिनी;  
आत्मजान्—अपने पुत्रों के लिए; स्व-कृतम्—अपने कर्मों के ही कारण; भुजः—भोग कर रहे हैं; जान्तवः—सारे जीव-जन्तु;  
न—नहीं; सदा—सदैव; एकत्र—एक स्थान में; दैव-अधीनाः—जो भाग्य के वश में हैं; तदा—अतएव; आसते—जीवित रहते  
हैं।

हे महान् आत्माओ, तुम दोनों के पुत्रों को अपने ही दुर्भाग्य का फल भोगना पड़ा है। अतः  
तुम उनके लिए शोक मत करो। सारे जीव परमेश्वर के नियंत्रण में होते हैं और वे सदैव एकसाथ  
नहीं रह सकते।

तात्पर्य : कंस ने अपनी बहन तथा बहनोई को महाभागौ कहकर सम्बोधित किया क्योंकि यद्यपि  
वह उनके सामान्य बच्चों का वध कर चुका था, किन्तु अब देवी दुर्गा इन दोनों से उत्पन्न हो चुकी थीं।  
चूँकि देवकी ने दुर्गादेवी को अपने गर्भ में धारण किया इसलिए उसने देवकी तथा उसके पति की  
प्रशंसा की। असुरगण देवी दुर्गा, काली इत्यादि के प्रति अत्यधिक समर्पित होते हैं। इसीलिए विस्मित  
कंस ने अपनी बहन तथा बहनोई के उच्च पद की प्रशंसा की। दुर्गा प्रकृति के नियमों के अधीन नहीं  
क्योंकि वे ही प्रकृति के नियमों की नियंत्रक हैं। किन्तु सामान्य जीव तो इन्हीं नियमों द्वारा विनियमित  
होते हैं ( प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः ) फलस्वरूप हममें से किसी को भी अधिक काल  
तक साथ-साथ रहने नहीं दिया जाता। कंस इस तरह की बातों से अपने बहन तथा बहनोई को  
सान्त्वना देना चाह रहा था।

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ।  
नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भुवि—पृथ्वी पर; भौमानि—पृथ्वी से बने सारे भौतिक पदार्थ यथा घड़े आदि; भूतानि—उत्पन्न; यथा—जिस तरह; यान्ति—  
प्रकट होते हैं; अपयान्ति—विलीन होते हैं ( खंडित होकर मिट्टी में मिल जाते हैं ); च—तथा; न—नहीं; अयम् आत्मा—आत्मा  
या आध्यात्मिक स्वरूप; तथा—उसी तरह; एतेषु—इन सब ( भौतिक तत्त्वों से बने पदार्थों ) में से; विपर्येति—बदल जाता है या  
टूट जाता है; यथा—जिस तरह; एव—निश्चय ही; भूः—पृथ्वी।

इस संसार में हम देखते हैं कि बर्तन, खिलौने तथा पृथ्वी के अन्य पदार्थ प्रकट होते हैं,  
टूटते हैं और फिर पृथ्वी में मिलकर विलुप्त हो जाते हैं। ठीक इसी तरह बद्धजीवों के शरीर

विनष्ट होते रहते हैं, किन्तु पृथ्वी की ही तरह ये जीव अपरिवर्तित रहते हैं और कभी विनष्ट नहीं होते ( *न हन्यते हन्यमाने शरीरे* )।

**तात्पर्य :** यद्यपि कंस को असुर कहा गया है, किन्तु *आत्म-तत्त्व* का उसे अच्छा ज्ञान था। पाँच हजार वर्ष पूर्व, कंस जैसे राजाओं को असुर कहा जाता था, किन्तु कंस आधुनिक राजनीतिज्ञों तथा कूटनीतिज्ञों से कहीं उत्तम था क्योंकि इन्हें *आत्म-तत्त्व* विषयक कोई ज्ञान नहीं है। वेदों में कहा गया है—*असङ्गो ह्ययं पुरुषः*—आत्मा का भौतिक शरीर के परिवर्तनों से कोई नाता नहीं होता। शरीर में छह परिवर्तन होते हैं—जन्म, वृद्धि, स्थिति, उप-जात, हास तथा संहार—किन्तु ये परिवर्तन आत्मा में नहीं देखे जाते। किसी शरीर के विनाश के बाद भी शरीर के तत्त्वों का मूल स्रोत बदलता नहीं। जीव भौतिक शरीर का भोग करता है, जो प्रकट होता है और विलुप्त होता रहता है, किन्तु पंचतत्त्व—क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर—वैसे के वैसे रहते हैं। यहाँ पर मिट्टी से बने पात्रों तथा खिलौनों का दृष्टान्त दिया गया है। ये टूटने पर अपने मूल अवयवों में मिल जाते हैं। कुछ भी हो, वस्तुओं का मूल स्रोत वही रहता है।

जैसाकि पहले बतलाया जा चुका है, शरीर का निर्माण आत्मा की इच्छाओं के अनुसार होता है। आत्मा जैसी इच्छा करता है, वैसा शरीर बनता है। इसीलिए *भगवद्गीता* (१८.६१) में कृष्ण कहते हैं—

*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।*

*भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥*

“हे अर्जुन! भगवान् हर प्राणी के हृदय में स्थित हैं और उन सारे जीवों को घुमाते रहते हैं, जो मानो भौतिक शक्ति से बने यंत्र पर आरूढ़ हैं।” न तो परमात्मा, न ही आत्मा अपने मूल आध्यात्मिक स्वरूप को बदलता है। आत्मा का न तो जन्म होता है, न मृत्यु, न शरीर की तरह उसमें परिवर्तन होते हैं। इसीलिए वेदसूक्ति है—*असङ्गो ह्ययं पुरुषः*—यद्यपि आत्मा इस भौतिक जगत में बद्ध है, किन्तु भौतिक शरीरों में होने वाले परिवर्तनों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

**यथानेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ।**

देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अन्-एवम्-विदः—ऐसे व्यक्ति का जिसे ( आत्म-तत्त्व तथा आत्मा के स्थायित्व का ) शरीर के परिवर्तनों के बावजूद कोई ज्ञान नहीं होता; भेदः—शरीर तथा आत्मा का अन्तर; यतः—जिससे; आत्म-विपर्ययः—यह मूर्खतापूर्ण ज्ञान कि वह शरीर है; देह-योग-वियोगौ च—तथा विभिन्न शरीरों में सम्बन्ध तथा वियोगों को उत्पन्न करता है; संसृतिः—बद्ध जीवन की निरन्तरता; न—नहीं; निवर्तते—रुकती है।

जो व्यक्ति शरीर तथा आत्मा की स्वाभाविक स्थिति को नहीं समझता वह देहात्मबुद्धि के प्रति अत्यधिक अनुरक्त रहता है। फलस्वरूप शरीर तथा उसके प्रतिफलों के प्रति अनुरक्ति के कारण वह अपने परिवार, समाज तथा राष्ट्र के साथ संयोग तथा वियोग का अनुभव करता है। जब तक ऐसा बना रहता है तब तक वह भौतिक जीवन बिताता है ( अन्यथा मुक्त है )।

तात्पर्य : श्रीमद्भागवत ( १.२.६ ) में पुष्टि की गई है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्म का अर्थ है “काम में लगना।” जो व्यक्ति भगवान् की सेवा में अविराम तथा निरवरोध लगा रहता है ( यतो भक्तिरधोक्षजे ) वह अपनी मूल आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त हुआ समझा जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर वह सदैव दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। अन्यथा देहात्मबुद्धि के कारण उसे भौतिक कष्ट भोगने पड़ते। जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम्। शरीर में जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग लगे ही रहते हैं, किन्तु जिसका जीवन आध्यात्मिक है ( यतो भक्तिरधोक्षजे ) उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग नहीं सताते। कोई यह तर्क कर सकता है कि चौबीसों घण्टे अध्यात्म में लगा रहने वाला व्यक्ति भी रोग से पीड़ित देखा जा सकता है। तथ्य तो यह है कि वह न तो कष्ट भोग रहा होता है, न रोगी होता है अन्यथा वह चौबीसों घण्टे आध्यात्मिक कार्यों में कैसे लगा रह सकता है? उदाहरणार्थ, कभी-कभी गंगा के जल के ऊपर गन्दा फेन या कूड़ा-करकट तैरता दिखता है। यह नीर धर्म कहलाता है। किन्तु जो गंगा में स्नान करने आता है, वह जल में तैरती हुई फेन तथा गंदगी की परवाह नहीं करता। वह इन गंदगियों को हाथ से हटाकर गंगा में स्नान करके स्नान का लाभ उठाता है। अतः आध्यात्मिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति फेन तथा कूड़ा-करकट या अन्य ऊपरी गंदी बातों से अप्रभावित रहता है। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोवस्वामी ने की है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा ।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥

“मनसा, वाचा, कर्मणा कृष्ण की सेवा में लगा हुआ व्यक्ति इस जगत में रहते हुए भी मुक्त होता है।” ( भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.१८७)। अतः गुरु को कभी भी सामान्य मनुष्य नहीं मानना चाहिए ( गुरुषु नरमतिर्... नारकी सः)। आध्यात्मिक गुरु या आचार्य जीवन में सदैव आध्यात्मिक पद पर रहता है। उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि नहीं सताते। अतएव हरिभक्तिविलास के अनुसार आचार्य के तिरोधान होने पर उसके शरीर को भस्मीभूत नहीं किया जाता क्योंकि वह आध्यात्मिक होता है। आध्यात्मिक शरीर भौतिक दशाओं से सदैव अप्रभावित रहता है।

तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ।

मानुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—अतः; भद्रे—मेरी बहन ( तुम्हारा कल्याण हो ); स्व-तनयान्—अपने पुत्रों के लिए; मया—मेरे द्वारा; व्यापादितान्—दुर्भाग्यवश मारे गए; अपि—यद्यपि; मा अनुशोच—दुखी मत होओ; यतः—क्योंकि; सर्वः—हर एक व्यक्ति; स्व-कृतम्—अपने कर्मों के ही सकाम फलों को; विन्दते—भोगता है; अवशः—विधना के वशीभूत होकर।

मेरी बहन देवकी, तुम्हारा कल्याण हो। हर व्यक्ति प्रारब्ध के अधीन अपने ही कर्मों के फल भोगता है। अतएव, दुर्भाग्यवश मेरे द्वारा मारे गए अपने पुत्रों के लिए शोक मत करो।

तात्पर्य : ब्रह्म-संहिता (५.५४) में कहा गया है—

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-

बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।

कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

इन्द्रगोप नामक क्षुद्र कीट से लेकर स्वर्गलोक के राजा इन्द्र तक सारे प्राणियों को अपने सकाम कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। हमें ऊपर से दिखलाई पड़ सकता है कि कोई व्यक्ति किन्हीं बाह्य कारणों से कष्ट भोग रहा है या सुख उठा रहा है, किन्तु असली कारण तो उसके अपने सकाम कर्म होते हैं। यहाँ तक कि जब कोई किसी को मार डालता है, तो यह माना जाता है कि मारे जाने वाले व्यक्ति को अपने ही कर्म का फल मिला है और मारने वाला व्यक्ति भौतिक प्रकृति का कारण मात्र था। इस तरह कंस ने इस विषय का गंभीरता से विवेचन करते हुए देवकी से क्षमा याचना की। देवकी के पुत्रों

की मृत्यु का कारण कंस नहीं अपितु उन पुत्रों का अपना भाग्य था। ऐसी अवस्था में देवकी को चाहिए था कि कंस को क्षमा कर दे और बिना शोक किए उसकी विगत करतूतों को भूल जाए। कंस ने अपना दोष स्वीकार किया, किन्तु उसने जो कुछ किया था वह प्रारब्ध के अधीन था। भले ही कंस देवकी के पुत्रों की मृत्यु का तत्कालिक प्रत्यक्ष कारण रहा हो, किन्तु सुदूर कारण तो उनके विगत कर्म ही थे। यथार्थ यही था।

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् ।

तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; हतः अस्मि—(दूसरों द्वारा) मारा जा रहा हूँ; हन्ता अस्मि—(अन्यों का) मारने वाला हूँ; इति—इस प्रकार; आत्मानम्—अपने को; मन्यते—मानता है; अ-स्व-दृक्—जो अपने आप को नहीं देखता है (देहात्मबुद्धि के अँधेरे के कारण); तावत्—तब तक; तत्-अभिमानि—अपने को मारा गया या मारने वाला मानते हुए; अज्ञः—मूर्ख व्यक्ति; बाध्य-बाधकताम्—कुछ उत्तरदायित्व लेने के लिए बाध्य सांसारिक व्यवहार; इयात्—रहता है।

देहात्मबुद्धि होने पर आत्म-साक्षात्कार के अभाव में मनुष्य यह सोचकर अँधेरे में रहता है कि “मुझे मारा जा रहा है” अथवा “मैंने अपने शत्रुओं को मार डाला है।” जब तक मूर्ख व्यक्ति इस प्रकार अपने को मारने वाला या मारा गया सोचता है तब तक वह भौतिक बन्धनों में रहता है और उसे सुख-दुख भोगना पड़ता है।

तात्पर्य : भगवान् की कृपा से कंस को हार्दिक खेद की अनुभूति हुई कि उसने व्यर्थ ही देवकी तथा वसुदेव जैसे वैष्णवों को सताया और इस तरह वह ज्ञान की दिव्य अवस्था को प्राप्त हुआ। कंस ने कहा, चूँकि मुझे ज्ञान हो चुका है कि मैं तुम दोनों के पुत्रों को मारने वाला (हत्यारा) नहीं हूँ अतः मैं उनकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी नहीं हूँ। जब तक मैं यह सोचता रहा कि मैं तुम्हारे पुत्रों द्वारा मारा जाऊँगा तब तक मैं अज्ञान में था, किन्तु अब मैं देहात्मबुद्धि जनित इस अज्ञान से मुक्त हूँ। भगवद्गीता (१८.१७) में कहा गया है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।

हत्वापि स इमाल्लोकात्र हन्ति न निबध्यते ॥

“जो मिथ्या अहंकार से प्रेरित नहीं है, जिसकी बुद्धि उलझी हुई नहीं है, वह इस जगत में मनुष्यों का वध करते हुए भी हत्यारा नहीं है। न ही वह अपने कर्मों से बँधा है।” इस स्वयंसिद्ध सत्य के



अनुसार कंस ने याचना की कि वह देवकी तथा वसुदेव के पुत्रों का वध करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। उसने कहा, “कृपया ऐसे मिथ्या बाह्य कार्यों के लिए मुझे क्षमा करें और इसी ज्ञान से शान्त हों।”

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ।

इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्त्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

क्षमध्वम्—कृपया क्षमा कर दें; मम—मेरे; दौरात्म्यम्—क्रूर कर्मों को; साधवः—तुम दोनों साधु व्यक्ति; दीन-वत्सलाः—गरीबों पर अत्यन्त कृपालु; इति उक्त्वा—ऐसा कहकर; अश्रु-मुखः—आँसुओं से भरा मुख; पादौ—पाँवों को; श्यालः—उसका साला कंस; स्वस्त्रः—अपनी बहन तथा बहनोई के; अथ—इस प्रकार; अग्रहीत्—पकड़ लिया।

कंस ने याचना की, “हे मेरी बहन तथा मेरे बहनोई, मुझ जैसे क्षुद्र-हृदय व्यक्ति पर कृपालु होयें क्योंकि तुम दोनों ही साधु सदृश व्यक्ति हो। मेरी क्रूरताओं को क्षमा कर दें।” यह कहकर खेद के साथ आँखों में अश्रु भरकर कंस वसुदेव तथा देवकी के चरणों पर गिर पड़ा।

तात्पर्य : यद्यपि कंस ने असली ज्ञान के विषय में सुन्दर-सुन्दर बातें कहीं, किन्तु उसके विगत कर्म निन्दनीय तथा नृशंस थे इसलिए उसने अपनी बहन और बहनोई के चरणों पर गिरकर उनसे क्षमा माँगी और स्वीकार किया कि वह घोर पापी है।

मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा ।

देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

मोचयाम् आस—कंस ने उन्हें मुक्त कर दिया; निगडात्—लोहे की जंजीरों से; विश्रब्धः—पूर्ण विश्वास के साथ; कन्यका-गिरा—देवी दुर्गा की वाणी में; देवकीम्—अपनी बहन देवकी के प्रति; वसुदेवम् च—तथा वसुदेव को; दर्शयन्—प्रदर्शित करते हुए; आत्म-सौहृदम्—आत्मीयता।

देवी दुर्गा की वाणी में पूरी तरह विश्वास करते हुए कंस ने देवकी तथा वसुदेव को तुरन्त ही लोहे की श्रृंखलाओं से मुक्त करते हुए पारिवारिक स्नेह का प्रदर्शन किया।

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी ।

व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भ्रातुः—अपने भाई कंस के प्रति; समनुतप्तस्य—खेद व्यक्त करने के कारण; क्षान्त-रोषा—क्रोध शान्त हुआ; च—भी; देवकी—कृष्ण की माता, देवकी ने; व्यसृजत्—छोड़ दिया; वसुदेवः च—तथा वसुदेव ने भी; प्रहस्य—हँसकर; तम्—कंस से; उवाच—कहा; ह—विगत में।

जब देवकी ने देखा कि उसका भाई पूर्वनिर्धारित घटनाओं की व्याख्या करते हुए वास्तव में

पश्चात्ताप व्यक्त कर रहा है, तो उनका सारा क्रोध जाता रहा। इसी प्रकार, वसुदेव भी क्रोध मुक्त हो गए। उन्होंने हँसकर कंस से कहा।

**तात्पर्य :** साधु सदृश व्यक्ति होने के कारण देवकी तथा वसुदेव ने कंस द्वारा प्रस्तुत यह सत्य स्वीकार कर लिया कि प्रारब्ध द्वारा हर बात पूर्व निर्धारित होती है। भविष्यवाणी के अनुसार कंस का वध देवकी के आठवें पुत्र द्वारा होना था। अतएव वसुदेव तथा देवकी को लगा कि इन सारी घटनाओं के पीछे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की बहुत बड़ी योजना थी। चूँकि भगवान् ने पहले ही सामान्य बालक की तरह जन्म ले लिया था और वे यशोदा के संरक्षण में सुरक्षित थे अतएव हर कार्य एक योजना के अनुसार घटित हो रहा था। फलतः कंस के प्रति दुर्भावना बनाए रखने की आवश्यकता नहीं थी। इस तरह उन्होंने कंस की बात मान ली।

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ।

अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—हाँ, यह ठीक है; एतत्—तुमने जो कहा है; महा-भाग—हे महापुरुष; यथा—जिस तरह; वदसि—तुम बोल रहे हो; देहिनाम्—जीवों के विषय में; अज्ञान-प्रभवा—अज्ञानवश; अहम्-धीः—यह मेरा स्वार्थ ( मिथ्या अहंकार ) है; स्व-परा इति—यह दूसरे का स्वार्थ है; भिदा—भेद; यतः—ऐसी देहात्मबुद्धि के कारण।

हे महापुरुष कंस, केवल अज्ञान के प्रभाव के ही कारण मनुष्य भौतिक देह तथा अभिमान स्वीकार करता है। आपने इस दर्शन के विषय में जो कुछ कहा वह सही है। आत्म-ज्ञान से रहित देहात्म-बुद्धि वाले व्यक्ति “यह मेरा है,” “ये पराया है” के रूप में भेदभाव बरतते हैं।

**तात्पर्य :** भगवान् के निर्देशानुसार कार्य करने वाली प्रकृति के नियमों के द्वारा हर कार्य स्वतः होता रहता है। स्वतंत्र रूप से किसी द्वारा कुछ किए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि इस भौतिक वातावरण में रहने वाला व्यक्ति प्रकृति के नियमों के अधीन है। अतएव हमारा मुख्य कार्य यह होना चाहिये कि हम इस बद्ध जीवन से अपने को छुड़ाएँ और आध्यात्मिक जगत में जाँय। मनुष्य केवल अज्ञानवश यह सोचता है कि “मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं कुत्ता हूँ, मैं बिल्ली हूँ” या फिर यदि अज्ञान और भी अधिक बढ़ जाता है, तो वह अपने को ईश्वर मानने लगता है। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हुए बिना मनुष्य का तामसी जीवन चलता रहता है।

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ।

मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

शोक—शोक; हर्ष—प्रसन्नता; भय—डर; द्वेष—ईर्ष्या; लोभ—लालच; मोह—मोह; मद—पागलपन, उन्मत्तता; अन्विताः—से युक्त; मिथः—परस्पर; घ्नन्तम्—मारने में व्यस्त; न पश्यन्ति—नहीं देखते; भावैः—भेदभाव के कारण; भावम्—भगवान् के प्रति अपनी स्थिति को; पृथक्-दृशः—ऐसे व्यक्ति जो हर वस्तु को भगवान् के नियंत्रण से पृथक् मानते हैं।

भेदभाव की दृष्टि रखने वाले व्यक्ति शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा मद जैसे भौतिक गुणों से समन्वित होते हैं। वे उस आसन्न (उपादान) कारण से प्रभावित होते हैं जिसका निराकरण करने में वे लगे रहते हैं क्योंकि उन्हें दूरस्थ परम कारण (निमित्त कारण) अर्थात् भगवान् का कोई ज्ञान नहीं होता।

तात्पर्य : कृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं ( सर्वकारणकारणं ), किन्तु जो कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं बनाये रखता, वह आसन्न कारणों से विचलित हो उठता है और भेद या भिन्नता की अपनी दृष्टि को रोक नहीं पाता। जब कोई निपुण चिकित्सक किसी रोगी का उपचार करता है, तो वह रोग के मूल कारण को खोजने का प्रयत्न करता है और उस मूल कारण के लक्षणों से भ्रमित नहीं होता। इसी तरह एक भक्त जीवन की पराजयों से कभी विचलित नहीं होता। तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः ( भागवत १०.१४.८ )। भक्त जब किसी विपदा में होता है, तो वह जानता है कि यह उसके अपने विगत दुष्कर्मों के कारण है, जो अब प्रतिक्रियाओं के रूप में प्रकट हो रहे हैं यद्यपि भगवान् की कृपा से ये मामूली ही हैं। कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम् ( ब्रह्म-संहिता ५.५४ )। जब भगवान् के संरक्षण में रहने वाला भक्त अपने पूर्वकर्मों की त्रुटियों के कारण कष्ट भोगता है, तो भगवत्कृपा से उसे थोड़ा ही कष्ट मिलता है। यद्यपि भक्त का रोग पूर्वजन्म में कभी की गई भूलों के कारण रहता है, किन्तु भक्त ऐसे कष्टों को सहन करता है और भगवान् पर पूरी तरह आश्रित रहता है। इस तरह उसे भौतिक शोक, हर्ष, भय इत्यादि कभी प्रभावित नहीं कर सकते। भक्त किसी भी कार्य को भगवान् से असम्बद्ध नहीं मानता। श्रील मध्वाचार्य ने भविष्य पुराण से उद्धरण देते हुए कहा है—

भगवद्दर्शनाद् यस्य विरोधादर्शनं पृथक् ।

पृथक् दृष्टिः स विज्ञेयो न तु सद्भेददर्शनः ॥

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः ।

देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कंसः—राजा कंस ने; एवम्—इस प्रकार; प्रसन्नाभ्याम्—अत्यन्त प्रसन्न; विशुद्धम्—विशुद्ध; प्रतिभाषितः—उत्तर दिए जाने पर; देवकी-वसुदेवाभ्याम्—देवकी तथा वसुदेव द्वारा; अनुज्ञातः—अनुमति से; अविशत्—प्रवेश किया; गृहम्—अपने महल में।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : शान्तमना देवकी तथा वसुदेव द्वारा शुद्धभाव से इस तरह सम्बोधित किए जाने पर कंस अत्यन्त हर्षित हुआ और उनकी अनुमति लेकर वह अपने घर चला गया।

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ।

तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उस; रात्र्याम्—रात को; व्यतीतायाम्—बिताकर; कंसः—कंस ने; आहूय—बुलाकर; मन्त्रिणः—सारे मंत्रियों को; तेभ्यः—उन्हें; आचष्ट—सूचित किया; तत्—वह; सर्वम्—सब; यत् उक्तम्—जो कहा गया था ( कि कंस का वध करने वाला अन्यत्र कहीं है ); योग-निद्रया—योगमाया, देवी दुर्गा द्वारा।

रात बीत जाने पर कंस ने अपने सारे मंत्रियों को बुलाकर वह सब उन्हें बतलाया जो योगमाया ने कहा था ( जिसने यह रहस्य बताया था कि कंस को मारने वाला कहीं अन्यत्र उत्पन्न हो चुका है )।

तात्पर्य : चंडी नामक वैदिक शास्त्र में भगवान् की शक्ति माया को निद्रा कहा गया है—दुर्गादेवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण समास्थितः। योगमाया तथा महामाया की शक्ति जीवों को इस जगत के अज्ञान रूपी गहन अंधकार में सुलाए रखती है। योगमाया अर्थात् देवी दुर्गा ने कंस को कृष्ण के जन्म के विषय में अंधकार में रखा और यह कहकर उसे भ्रान्त किया कि उसका शत्रु कृष्ण अन्यत्र जन्म ले चुका है। कृष्ण तो देवकी के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे, किन्तु भगवान् की पूर्वयोजना के अनुसार, जिसकी भविष्यवाणी ब्रह्मा को की थी, वे माता यशोदा तथा नन्द महाराज एवं अन्य घनिष्ठ मित्रों तथा भक्तों को ग्यारह वर्षों तक आनन्द प्रदान करने के लिए वृन्दावन गए। इसके बाद वे कंस का वध करने लौटे। चूँकि कंस इसे नहीं जानता था इसीलिए उसने योगमाया के इस कथन पर विश्वास कर लिया कि कृष्ण अन्यत्र जन्म ले चुके हैं, देवकी से उत्पन्न नहीं हुए।

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः ।

देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

आकर्ण्य—सुनकर; भर्तुः—अपने स्वामी के; गदितम्—कथन को; तम् ऊचुः—उससे कहा; देव-शत्रवः—देवताओं के शत्रु, सारे असुर; देवान्—देवताओं के; प्रति—प्रति; कृत-अमर्षाः—ईर्ष्यालु; दैतेयाः—असुरगण; न—नहीं; अति-कोविदाः—अत्यन्त कार्यकुशल ।

अपने स्वामी की बात सुनकर, देवताओं के शत्रु तथा अपने कामकाज में अकुशल, ईर्ष्यालु असुरों ने कंस को यह सलाह दी ।

तात्पर्य : मनुष्यों के दो भिन्न-भिन्न प्रकार हैं—असुर तथा सुर ।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च ।

विष्णुभक्त स्मृतो दैव आसुरस्तद् विपर्ययः ॥

( पद्म पुराण )

भगवान् विष्णु या कृष्ण के भक्त सुर या देवता हैं और भक्तों के विरोधी लोग असुर हैं । भक्तगण सारे व्यवहारों में पटु होते हैं ( यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ) । इसलिए वे कोविद अर्थात् “पटु” कहलाते हैं । किन्तु असुरगण ऊपर से कामुक वृत्तियों में पटुता दिखलाते हुए भी पूरी तरह मूर्ख होते हैं । न तो वे गम्भीर होते हैं, न कोविद । वे जो भी करते हैं वह अपूर्ण होता है । मोघाशा मोघकर्माणः । यह विवरण असुरों के विषय में भगवद्गीता (९.१२) में पाया जाता है, जिसके अनुसार वे जो भी करते हैं उससे उन्हें निराशा ही मिलती है । कंस को मंत्रणा देने वाले ऐसे ही व्यक्ति थे, जो उनके प्रधान मित्र तथा मंत्री थे ।

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ।

अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; चेत्—यदि ऐसा है; तर्हि—तो; भोज-इन्द्र—हे भोजराज; पुर-ग्राम-व्रज-आदिषु—सारे नगरों, गाँवों तथा चरागाहों में; अनिर्दशान्—दस दिन से कम आयु वाले; निर्दशान् च—तथा जो दस दिन पूरा कर चुके हैं; हनिष्यामः—हम मार डालेंगे; अद्य—आज से; वै—निस्सन्देह; शिशून्—बच्चों को ।

हे भोजराज, यदि ऐसी बात है, तो हम आज से उन सारे बालकों को जो पिछले दस या उससे कुछ अधिक दिनों में सारे गाँवों, नगरों तथा चरागाहों में उत्पन्न हुए हैं, मार डालेंगे ।

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ।  
नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; उद्यमैः—अपने प्रयासों से; करिष्यन्ति—करेंगे; देवाः—सारे देवता; समर-भीरवः—लड़ने से भयभीत; नित्यम्—सदैव; उद्विग्न-मनसः—व्याकुल चित्त वाले; ज्या-घोषैः—डोरी की ध्वनि से; धनुषः—धनुष की; तव—तुम्हारी।

सारे देवता आपकी धनुष की डोरी ( प्रत्यंचा ) की आवाज से सदैव भयभीत रहते हैं। वे सदैव चिन्तित रहते हैं और लड़ने से डरते हैं। अतः वे अपने प्रयत्नों से आपको किस प्रकार हानि पहुँचा सकते हैं ?

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः ।  
जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अस्यतः—आपके द्वारा छोड़े गए तीरों से छेदे जाने से; ते—आपके; शर-व्रातैः—बाणों के समूह से; हन्यमानाः—मारे गए; समन्ततः—चारों ओर; जिजीविषवः—जीने की कामना करते हुए; उत्सृज्य—युद्धभूमि छोड़कर; पलायन-पराः—बचकर भागने की इच्छा वाले; ययुः—भाग गए।

आपके द्वारा चारों दिशाओं में छोड़े गए बाणों के समूहों से छिदकर कुछ सुरगण जो घायल हो चुके थे, किन्तु जिन्हें जीवित रहने की उत्कण्ठा थी युद्धभूमि छोड़कर अपनी जान लेकर भाग निकले।

केचित्प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ।  
मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

केचित्—उनमें से कुछ; प्राञ्जलयः—आपको प्रसन्न करने के लिए अपने हाथ जोड़े हुए; दीनाः—अत्यन्त निरीह; न्यस्त-शस्त्राः—सारे हथियारों से विहीन; दिवौकसः—देवतागण; मुक्त-कच्छ-शिखाः—अपने वस्त्र तथा बाल खोले और बिखरे हुए; केचित्—कुछ; भीताः—हम अत्यन्त भयभीत हैं; स्म—हुए थे; इति वादिनः—उन्होंने इस तरह कहा।

हार जाने पर तथा सारे हथियारों से विहीन होकर कुछ देवताओं ने लड़ना छोड़ दिया और हाथ जोड़कर आपकी प्रशंसा करने लगे और उनमें से कुछ अपने वस्त्र तथा केश खोले हुए आपके समक्ष कहने लगे, “हे प्रभु, हम आपसे अत्यधिक भयभीत हैं।”

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ।  
हंस्यन्यासक्तविमुखाभग्नचापानयुध्यतः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वम्—आप; विस्मृत-शस्त्र-अस्त्रान्—जो अपने हथियार चलाना भूल चुके हैं; विरथान्—रथविहीन; भय-संवृतान्—भय से भाँचक्रे; हंसि—मारते हो; अन्य-आसक्त-विमुखान्—जो लड़ने में अनुरक्त न रहकर कुछ अन्य कार्य में लगे रहते हैं; भग्न-चापान्—टूटे धनुषों वाले; अयुध्यतः—अतः युद्ध न करते हुए।

जब देवतागण रथविहीन हो जाते हैं, जब वे अपने हथियारों का प्रयोग करना भूल जाते हैं, जब वे भयभीत रहते हैं या लड़ने के अलावा किसी दूसरे काम में लगे रहते हैं या जब अपने धनुषों के टूट जाने के कारण युद्ध करने की शक्ति खो चुके होते हैं, तो आप उनका वध नहीं करते।

तात्पर्य : युद्ध करने के भी कुछ नियम होते हैं। जब शत्रु के पास रथ नहीं होता, वह भय के कारण युद्धकला भूल जाता है या फिर युद्ध नहीं करना चाहता तो उसका वध नहीं करना चाहिए। कंस के मंत्री उसे स्मरण दिला रहे थे कि अपनी शक्ति के बावजूद भी वह युद्ध के नियमों से अवगत था इसीलिए उसने देवताओं को उनकी अक्षमता के कारण क्षमा कर दिया था। मंत्रियों ने कहा, “किन्तु प्रस्तुत आपत्ति में ऐसी दया या सैन्य शिष्टता दिखाने की घड़ी नहीं रह गई। अब तो आपको हर हालत में लड़ने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।” इस तरह मंत्रियों ने कंस को सलाह दी कि लड़ाई के परम्परागत शिष्टाचार को त्यागकर वह किसी भी मूल्य पर शत्रु को प्रताड़ित करे।

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ।

रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा ।

किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

किम्—किस बात का भय; क्षेम—ऐसे स्थान में जहाँ लड़ने की क्षमता का अभाव है; शूरैः—देवताओं द्वारा; विबुधैः—ऐसे शक्तिशाली पुरुषों द्वारा; असंयुग-विकत्थनैः—वृथा डींग मारने से, लड़ने से दूर रहने; रहः-जुषा—हृदय के कोने में रहने वाला; किम् हरिणा—भगवान् विष्णु से क्या डरना; शम्भुना—शिव से; वा—अथवा; वन-ओकसा—बनवासी; किम् इन्द्रेण—इन्द्र से क्या भय; अल्प-वीर्येण—वह तनिक भी शक्तिशाली नहीं है ( कि आपसे लड़ सके ); ब्रह्मणा—और ब्रह्मा से डरने की तो कोई बात ही नहीं; वा—अथवा; तपस्यता—जो सदैव ध्यान में मग्न रहता हो।

देवतागण युद्धभूमि से दूर रहकर व्यर्थ ही डींग मारते हैं। वे वहीं अपने पराक्रम का प्रदर्शन कर सकते हैं जहाँ युद्ध नहीं होता। अतएव ऐसे देवताओं से हमें किसी प्रकार का भय नहीं है। जहाँ तक भगवान् विष्णु की बात है, वे तो केवल योगियों के हृदय में एकान्तवास करते हैं और भगवान् शिव, वे तो जंगल चले गये हैं। ब्रह्मा सदैव तपस्या तथा ध्यान में ही लीन रहते हैं। इन्द्र इत्यादि अन्य सारे देवता पराक्रमविहीन हैं। अतः आपको कोई भय नहीं है।

तात्पर्य : कंस के मंत्रियों ने उससे कहा कि सारे बड़े-बड़े देवता उसके भय से भाग गए थे। एक

जंगल को गया, एक हृदय के भीतर चला गया है और एक तपस्या में लगा है। उन्होंने कहा, “अतएव आप देवताओं से किसी प्रकार भयभीत न हों, बस लड़ने के लिए तैयार हो जाएँ।”

तथापि देवाः सापत्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ।

ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

तथा अपि—फिर भी; देवाः—देवतागण; सापत्यात्—शत्रुता के कारण; न उपेक्ष्याः—उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए; इति मन्महे—यह हमारा मत है; ततः—इसलिए; तत्-मूल-खनने—उन्हें समूल नष्ट करने के लिए; नियुङ्क्ष्व—नियुक्त कीजिए; अस्मान्—हमें; अनुव्रतान्—आपका अनुगमन करने के लिए तत्पर।

फिर भी हमारा मत है कि उनकी शत्रुता के कारण देवताओं के साथ लापरवाही नहीं की जानी चाहिए। अतएव उनको समूल नष्ट करने के लिए आप हमें उनके साथ युद्ध में लगाइए क्योंकि हम आपका अनुगमन करने के लिए तैयार हैं।

तात्पर्य : नैतिक उपदेशों के अनुसार अग्नि को पूरी तरह बुझाने में, रोग का पूरा-पूरा निवारण करने तथा ऋण पूरा अदा करने में किसी तरह की लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए। अन्यथा ये बढ़ते जाएँगे और बाद में इनका शमन कर पाना कठिन होगा। इसलिए मंत्रियों ने कंस को सलाह दी कि वह अपने शत्रुओं का समूल विनाश कर दे।

यथामयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि-

र्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ।

यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा

रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; आमयः—रोग; अङ्गे—शरीर में; समुपेक्षितः—उपेक्षा किए जाने से; नृभिः—मनुष्यों द्वारा; न—नहीं; शक्यते—समर्थ होता है; रूढ-पदः—गम्भीर होने पर; चिकित्सितुम्—उपचार के योग्य; यथा—जिस तरह; इन्द्रिय-ग्रामः—इन्द्रियाँ; उपेक्षितः—प्रारम्भ में वश में न रखने से; तथा—उसी तरह; रिपुः महान्—बड़ा शत्रु; बद्ध-बलः—बलवान हुआ तो; न—नहीं; चाल्यते—वश में किया जा सकता है।

जिस तरह शुरू में रोग की उपेक्षा करने से वह गम्भीर तथा दुःसाध्य हो जाता है या जिस तरह प्रारम्भ में नियंत्रित न करने से, बाद में इन्द्रियाँ वश में नहीं रहतीं उसी तरह यदि आरम्भ में शत्रु की उपेक्षा की जाती है, तो बाद में वह दर्जेय हो जाता है।

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः ।



तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

मूलम्—आधार; हि—निस्सन्देह; विष्णुः—भगवान् विष्णु हैं; देवानाम्—देवताओं के; यत्र—जहाँ; धर्मः—धर्म; सनातनः—शाश्वत, परम्परागत; तस्य—उस (आधार) का; च—भी; ब्रह्म—ब्रह्म सभ्यता; गो—गो-रक्षा; विप्राः—ब्राह्मणगण; तपः—तपस्या; यज्ञाः—यज्ञ; स-दक्षिणाः—समुचित पारिश्रमिक (दक्षिणा) समेत।

समस्त देवताओं के आधार भगवान् विष्णु हैं जिनका वास वहीं होता है जहाँ धर्म, परम्परागत संस्कृति, वेद, गौर्वें, ब्राह्मण, तपस्या तथा दक्षिणायुत यज्ञ होते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर सनातन धर्म का वर्णन किया गया है, जिसमें ब्रह्मी संस्कृति, ब्राह्मण, यज्ञ तथा धर्म निहित होते हैं। ये मिलकर विष्णु साम्राज्य की स्थापना करते हैं। विष्णु साम्राज्य के बिना कोई भी सुखी नहीं हो सकता। न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्—इस आसुरी सभ्यता में दुर्भाग्यवश लोग यह नहीं समझ पाते कि मानव समाज का स्वार्थ विष्णु में निहित है। दुराशया ये बहिरर्थमानिनः—अतः वे निराशापूर्ण आशा में लगे हैं। लोग ईशभावनामृत या कृष्णभावनामृत के बिना ही सुखी रहना चाहते हैं क्योंकि उनका मार्गदर्शन ऐसे अज्ञानी नेता करते हैं, जो मानव समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करते हैं। कंस के असुर अनुयायी मानव सुख की परम्परागत स्थिति को भंग करके देवताओं और भक्तों को हराना चाह रहे थे। जब तक देवताओं तथा भक्तों का प्राधान्य नहीं होगा, तब तक असुरगण बढ़ेंगे और मानव समाज अस्त-व्यस्त होता रहेगा।

तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ।

तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; सर्व-आत्मना—हर तरह से; राजन्—हे राजन्; ब्राह्मणान्—ब्राह्मणों को; ब्रह्म-वादिनः—विष्णु-केन्द्रित ब्रह्मी संस्कृति को बनाए रखने वालों; तपस्विनः—तपस्वी जनों; यज्ञ-शीलान्—यज्ञ में लगे रहने वालों को; गाः च—गौर्वें तथा गौर्वों की रक्षा करने वालों को; हन्मः—हम वध करेंगे; हविः-दुघाः—जिनके दूध से यज्ञ में डालने के लिए घी मिलता है।

हे राजन्, हम आपके सच्चे अनुयायी हैं, अतः वैदिक ब्राह्मणों, यज्ञ तथा तपस्या में लगे व्यक्तियों तथा उन गायों का, जो अपने दूध से यज्ञ के लिए घी प्रदान करती हैं, वध कर डालेंगे।

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ।

श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

विप्राः—ब्राह्मण; गावः च—तथा गाएँ; वेदाः च—तथा वैदिक ज्ञान; तपः—तपस्या; सत्यम्—सत्यता; दमः—इन्द्रिय संयम; शमः—मन का संयम; श्रद्धा—श्रद्धा; दया—दया; तितिक्षा—सहिष्णुता; च—भी; क्रतवः च—तथा यज्ञ भी; हरेः तनूः—भगवान् विष्णु के शरीर के विभिन्न अंग हैं।

ब्राह्मण, गौर्वें, वैदिक ज्ञान, तपस्या, सत्य, मन तथा इन्द्रियों का संयम, श्रद्धा, दया, सहिष्णुता तथा यज्ञ—ये भगवान् विष्णु के शरीर के विविध अंग हैं और दैवी सभ्यता के ये ही साज-सामान हैं।

तात्पर्य : भगवान् को नमस्कार करते समय हम कहते हैं—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

जब कृष्ण सामाजिक व्यवस्था में वास्तविक पूर्णता स्थापित करने आते हैं, तो वे गौर्वों तथा ब्राह्मणों को अपना संरक्षण प्रदान करते हैं ( गोब्राह्मणहिताय च )। यह उनकी पहली अभिरुचि रहती है क्योंकि ब्राह्मणों तथा गौर्वों की सुरक्षा के बिना मानव सभ्यता असम्भव है और सुखी शान्त जीवन का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए असुरगण सदा ब्राह्मणों तथा गौर्वों का वध करने की ताक में रहते हैं। विशेष रूप से इस कलियुग में गौर्वें विश्वभर में मारी जा रही हैं और ज्योंही ब्रह्मी सभ्यता को स्थापित करने के लिए आन्दोलन होता है त्योंही आम जनता से विद्रोह करा दिया जाता है। वे कृष्णभावनामृत आन्दोलन को एक तरह की “दिमागी धुलाई” मानते हैं। ऐसे ईर्ष्यालु लोग ईश्वरविहीन सभ्यता में किस तरह सुखी हो सकते हैं? भगवान् ऐसे लोगों को जन्म-जन्मांतर अंधकार में रखकर दण्ड देते हैं और उन्हें निम्न से निम्नतम नरक के जीवन में धकेल देते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने ब्रह्मी सभ्यता का शुभारम्भ किया है, किन्तु विशेष रूप से जब पाश्चात्य देशों में इसका सूत्रपात हो रहा है, तो असुरगण अनेक प्रकार से इसे रोकने के प्रयास कर रहे हैं। इतने पर भी मानव समाज के लाभ के लिए हमें इस आन्दोलन को सहिष्णुतापूर्वक आगे बढ़ाना चाहिए।

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विङ्गुहाशयः ।

तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ।

अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह ( विष्णु ); हि—निस्सन्देह; सर्व-सुर-अध्यक्षः—सारे देवताओं का अगुवा; हि—निस्सन्देह; असुर-द्विट्—असुरों का शत्रु; गुहा-शयः—हर एक के हृदय के भीतर का परमात्मा; तत्-मूलाः—उसके चरणकमलों में शरण लेकर; देवताः—सारे

देवता जीवित हैं; सर्वाः—वे सभी; स-ईश्वराः—शिव समेत; स-चतुः-मुखाः—तथा चार मुखों वाले ब्रह्मा भी; अयम्—यह है; वै—निस्सन्देह; तत्-वध-उपायः—उसके ( विष्णु के ) मारने का एकमात्र उपाय; यत्—जो; ऋषीणाम्—ऋषियों-मुनियों अथवा वैष्णवों का; विहिंसनम्—सभी प्रकार के दण्ड द्वारा दमन।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वास करने वाले परमात्मा स्वरूप भगवान् विष्णु असुरों के परम शत्रु हैं और इसीलिए वे असुरद्विद् कहलाते हैं। वे सारे देवताओं के अगुआ हैं क्योंकि भगवान् शिव तथा भगवान् ब्रह्मा समेत सारे देवता उन्हीं के संरक्षण में रह रहे हैं। बड़े-बड़े ऋषि, साधु तथा वैष्णव भी उन्हीं पर आश्रित रहते हैं। अतः वैष्णवों का उत्पीड़न करना ही विष्णु को मारने का एकमात्र उपाय है।

तात्पर्य : विशेष रूप से देवता तथा वैष्णवजन भगवान् विष्णु के अंग हैं क्योंकि वे उनकी आज्ञा का सदैव पालन करते हैं ( ॐ तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः )। कंस के असुर अनुयायियों ने सोचा कि यदि वैष्णवों, साधु-पुरुषों तथा ऋषियों को सताया जाएगा तो विष्णु का मूल शरीर सहज ही विनष्ट हो जाएगा। इस तरह उन्होंने वैष्णववाद का दमन करने का निश्चय किया। असुरगण नहीं चाहते कि वैष्णववाद फैले इसलिए वे वैष्णवों को निरन्तर सताते रहने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वैष्णवजन एकमात्र भक्ति का प्रचार करते हैं। वे कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं देते क्योंकि यदि कोई अपने को भवबन्धन से छुड़ाना चाहता है, तो अन्ततोगत्वा उसे वैष्णव बनना होगा। हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी ओर उन्मुख है इसीलिए असुरगण इसे दबाने में सदैव लगे रहते हैं।

श्रीशुक उवाच

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह सम्मन्त्र्य दुर्मतिः ।

ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; दुर्मन्त्रिभिः—अपने बुरे मंत्रियों के; कंसः—राजा कंस; सह—साथ; सम्मन्त्र्य—विस्तार से विचार-विमर्श करके; दुर्मतिः—बुद्धिहीन; ब्रह्म-हिंसाम्—ब्राह्मणों के उत्पीड़न को; हितम्—सर्वोत्कृष्ट उपाय के रूप में; मेने—मान लिया; काल-पाश-आवृतः—यमराज के विधि-विधानों से बँधा हुआ; असुरः—असुर होने के कारण।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार अपने बुरे मंत्रियों की सलाह पर विचार करके यमराज के नियमों से बँधा हुआ होने तथा असुर होने से बुद्धिहीन उस कंस ने सौभाग्य प्राप्त करने के उद्देश्य से साधु-पुरुषों तथा ब्राह्मणों को सताने का निश्चय किया।

**तात्पर्य :** श्रील लोचनदास ठाकुर का गीत है— आपन करम, भुञ्जाये शमन, कहये लोचनदास। ईश्वरविहीन अभक्तगण ऋषियों तथा शास्त्रों से सदुपदेश ग्रहण न करके मनमाने ढंग से कार्य करते हैं। किन्तु वास्तव में किसी की अपनी कोई योजना नहीं होती क्योंकि सभी प्रकृति के नियमों से बँधे होने के कारण बद्ध जीवन की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कर्म करेंगे। अतः मनुष्य को अपना निर्णय बदलकर कृष्ण तथा कृष्ण भक्तों के निर्णय का पालन करना होगा। तभी वह यमराज के दण्ड से बच सकता है। कंस अनपढ़ न था। वसुदेव तथा देवकी के साथ उसकी बातों से ऐसा लगता है कि वह प्रकृति के नियमों के बारे में सब जानता था। किन्तु अपने बुरे मंत्रियों की संगति के कारण वह अपने कल्याण के विषय में कोई स्पष्ट निर्णय नहीं ले सका। इसीलिए *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य २२.५४) में कहा गया है—

‘साधु-संग’ ‘साधु-संग’—सर्व-शास्त्रे कय।

लव-मात्र साधु-संगे सर्व-सिद्धि हय ॥

यदि कोई अपना असली कल्याण चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह साधु पुरुषों तथा भक्तों की संगति करे और इस तरह अपने जीवन की भौतिक दशा को सुधारे।

सन्दिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ।

कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

सन्दिश्य—अनुमति देकर; साधु-लोकस्य—साधु पुरुषों के; कदने—सताने में; कदन-प्रियान्—अन्यों को सताने में प्रिय असुरों को; काम-रूप-धरान्—अपनी इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करने में समर्थ; दिक्षु—सारी दिशाओं में; दानवान्—असुरों को; गृहम् आविशत्—कंस अपने महल में चला गया।

कंस के अनुयायी ये राक्षसगण अन्यों को, विशेष रूप से वैष्णवों को सताने में दक्ष थे और इच्छानुसार कोई भी रूप धर सकते थे। इन असुरों को सभी दिशाओं में जाकर साधु पुरुषों को सताने की अनुमति देकर कंस अपने महल के भीतर चला गया।

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ।

सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे असुर मंत्रीगण; वै—निस्सन्देह; रजः—प्रकृतयः—रजोगुणी प्रकृति के कारण; तमसा—तमोगुण से परिपूर्ण; मूढ-चेतसः—मूर्ख व्यक्ति; सताम्—साधु पुरुषों को; विद्वेषम्—सताना, उतपीड़न; आचेरुः—सम्पन्न किया; आरात् आगत-मृत्यु-वः—मृत्यु पहले से ही जो उनके निकट थी।

रजो तथा तमोगुण से पूरित तथा अपने हित या अहित को न जानते हुए उन असुरों ने, जिनकी मृत्यु उनके सिर पर नाच रही थी, साधु पुरुषों को सताना प्रारम्भ कर दिया।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता ( २.१३ ) में कहा गया है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

“जिस प्रकार इस शरीर में देहधारी जीवात्मा बालपन से युवावस्था तथा फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी तरह मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। स्वरूप सिद्ध पुरुष ऐसे परिवर्तन से मोहित नहीं होता।” रजो तथा तमोगुण से पूर्ण गैरजिम्मेदार व्यक्ति मूर्खता से ऐसे काम करते रहते हैं, जिन्हें नहीं किया जाना चाहिए ( नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म )। किन्तु ऐसे गैरजिम्मेदार कर्मों का फल भी जानना चाहिए जैसाकि अगले श्लोक में कहा गया है।

आयुः श्रियं यशो धर्म लोकानाशिष एव च ।

हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

आयुः—उम्र; श्रियम्—सौन्दर्य; यशः—यश; धर्मम्—धर्म; लोकान्—स्वर्गलोक को जाना; आशिषः—आशीर्वाद; एव—निस्सन्देह; च—भी; हन्ति—विनष्ट करता है; श्रेयांसि—वर; सर्वाणि—सारे; पुंसः—किसी व्यक्ति के; महत्-अतिक्रमः—महापुरुषों के विरुद्ध जाना।

हे राजन्, जब कोई व्यक्ति महापुरुषों को सताता है, तो उसकी दीर्घायु, सौन्दर्य, यश, धर्म, आशीर्वाद तथा उच्चलोकों को जाने के सारे वर विनष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत “राजा कंस के अत्याचार” नामक चौथे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।